

स श्रीवज्रकुमारोत्र जिनधर्मे सुवत्सलः। नित्यं जैनमते कुर्यान्मतिं मे मुनिनायकः ॥११८॥

गच्छे श्रीमति मूलसंघतिलके श्रीशारदायाः शुभे

श्रीभट्टारकमल्लिभूषणगुरुः सूरिः श्रुताब्धिः सुधीः।

सम्यग्दर्शनबोधवृत्तविलसद्रत्नाकरोनिर्मलो

दद्यान्मे वरमंगलानि नितरां भक्त्या समाराधितः ॥११९॥

इति कथाकोशे प्रभावनाङ्गे वज्रकुमार मुनेः कथा समाप्ता।

१४. नागदत्तमुनेः कथा

नत्वा पंच गुरुभक्त्या पंचमीगतिनायकान्। नागदत्तमुनेश्चारु चरित्रं रचयाम्यहम् ॥१॥

देशेऽत्र मगधे ख्याते रम्ये राजगृहे पुरे। प्रजापालो महाराजः प्रजापालनतत्परः ॥२॥

धार्मिको न्यायशास्त्रज्ञो जिनभक्तिपरायणः। तद्राज्ञी प्रियधर्माख्या दानपूजाप्रसन्नधीः ॥३॥

तयोर्बभूवतुः पुत्रौ विख्यातौ गुणशालिनौ। ज्येष्ठोसौ प्रियधर्माख्यो द्वितीयः प्रियमित्रवाक् ॥४॥

एकदा राजपुत्रौ तौ दीक्षां जैनीं समाश्रितौ। तपः कृत्वाच्युते स्वर्गे देवौ जातौ महर्द्धिकौ ॥५॥

ज्ञात्वा पूर्वभवं तत्र प्रशस्य जिनशासनम्। कुर्वाणौ जैनसद्भक्तिं संस्थितौ सुखतश्च तौ ॥६॥

धर्म प्रेमी श्रीवज्रकुमार मुनि मेरी बुद्धि को संदा जैनधर्म में दृढ़ रखें, जिसके द्वारा मैं भी कल्याण पथ पर चलकर अपना अन्तिम साध्य मोक्ष प्राप्त कर सकूँ ॥११८॥

श्रीमल्लिभूषण गुरु मुझे मंगल प्रदान करें, वे मूल संघ के प्रधान शारदा गच्छ में हुए हैं। वे ज्ञान के समुद्र हैं और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूपी रत्नों से अलंकृत हैं। मैं उनकी भक्तिपूर्वक आराधना करता हूँ ॥११९॥

१४. नागदत्त मुनि की कथा

मोक्ष राज्य के अधीश्वर श्रीपंच परम गुरु को नमस्कार कर श्री नागदत्त मुनि का सुन्दर चरित्र मैं लिखता हूँ ॥१॥

मगधदेश की प्रसिद्ध राजधानी राजगृह में प्रजापाल नाम के राजा थे। वे विद्वान् थे, उदार थे, धर्मात्मा थे, जिनभगवान् के भक्त थे और नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करते थे। उनकी रानी का नाम था प्रियधर्मा वह भी बड़ी सरल स्वभाव की सुशील थी। उसके दो पुत्र हुए। उनके नाम थे प्रियधर्म और प्रियमित्र। दोनों भाई बड़े बुद्धिमान् और सुचरित थे ॥२-४॥

किसी कारण से दोनों भाई संसार से विरक्त होकर साधु बन गए और अन्त समय समाधिमरण कर अच्युतस्वर्ग में जाकर देव हुए। उन्होंने वहाँ परस्पर में प्रतिज्ञा की कि, “जो दोनों में से पहले मनुष्य पर्याय प्राप्त करे उसके लिए स्वर्गस्थ देव का कर्तव्य होगा कि वह उसे जाकर सम्बोधे और संसार से विरक्त कर मोक्षसुख को देने वाली जिनदीक्षा ग्रहण करने के लिए उसे उत्साहित करे।” इस प्रकार

धर्मानुरागतस्तत्र प्रतिज्ञेति तयोरभूत्। आवयोर्योर्द्वयोर्मध्ये पूर्वं याति नृजन्मताम् ॥७॥
 स्वर्गस्थितेन देवेन स सम्बोध्य जिनेशिनः। दीक्षां संग्राहितव्यश्च भवभ्रमणनाशिनीम् ॥८॥
 नगर्यामुज्जयिन्यां च नागधर्मो महीपतिः। नागदत्ता महाराज्ञी रूपलावण्यमण्डिता ॥९॥
 प्रियदत्तसुरस्तस्यां स्वर्गादागत्य शुद्धधीः। नागदत्तः सुतो जातः नागक्रीडाविचक्षणः ॥१०॥
 एकदा प्रियधर्मोसौ देवो वाचातिनिश्चलः। भूत्वा गारुडिको धृत्वा सर्पयुग्मं करण्डके ॥११॥
 उज्जयिन्यां समागत्य तस्य सम्बोधनाय च। सर्पक्रीडाविधौ चंचु-रहं चेति परिभ्रमन् ॥१२॥
 तदासौ नागदत्तेन राजपुत्रेण गर्विणा। धृतः प्रोक्तं च भो नाग-पालक प्रस्फुरद्विषम् ॥१३॥
 त्वदीयं सर्पकं मुञ्च तेन क्रीडां करोम्यहम्। तदा गारुडिकः प्राह राजपुत्रैः समं मया ॥१४॥
 विवादः क्रियते नैव रुष्टो राजा यदि ध्रुवम्। तदा मां मारयत्येव समाकर्ण्य नृपात्मजः ॥१५॥
 नीत्वा तं भूपतेरग्रे दापयित्वाऽभयं वचः। एकं भुजंगं तस्य क्रीडया जयति स्म सः ॥१६॥

प्रतिज्ञा कर वे वहाँ सुख से रहने लगे। उन दोनों में से प्रियदत्त की आयु पहले पूर्ण हो गई वह वहाँ से उज्जयिनी के राजा नागधर्म की प्रिया नागदत्ता के, जो कि बहुत ही सुन्दरी थी, नागदत्त नामक पुत्र हुआ। नागदत्त सर्पों के साथ क्रीड़ा करने में बहुत चतुर था, सर्प के साथ उसे विनोद करते देखकर सब लोग बड़ा आश्चर्य प्रकट करते थे ॥५-१०॥

एक दिन प्रियधर्म, जो कि स्वर्ग में नागदत्त का मित्र था, गारुडिका वेष लेकर नागदत्त को सम्बोधने को उज्जयिनी में आया। उसके पास दो भयंकर सर्प थे। वह शहर में घूम-घूमकर लोगों को तमाशा बताता और सर्व साधारण में यह प्रकट करता कि मैं सर्प-क्रीड़ा का अच्छा जानकार हूँ। कोई और भी इस शहर में सर्प-क्रीड़ा का अच्छा जानकार हो, तो फिर उसे मैं अपना खेल दिखलाऊँ। यह हाल धीरे-धीरे नागदत्त के पास पहुँचा। वह तो सर्प-क्रीड़ा का पहले ही से बहुत शौकीन था, फिर अब तो एक और उसका साथी मिल गया। उसने उसी समय नौकरों को भेजकर उसे अपने पास बुलाया। गारुडि तो इस कोशिश में था कि नागदत्त को किसी तरह मेरी खबर लग जाये और वह मुझे बुलावे। प्रियधर्म उसके पास गया। उसके पहुँचते ही नागदत्त ने अभिमान में आकर उससे कहा-मंत्रविद्, तुम अपने सर्पों को बाहर निकालो न? मैं उनके साथ कुछ खेल तो देखूँ कि वे कैसे जहरीले हैं ॥११-१४॥

प्रियधर्म बोला-मैं राजपुत्रों के साथ ऐसी हँसी दिल्लगी या खेल करना नहीं चाहता कि जिसमें जान की जोखिम तक हो, बतलाओ मैं तुम्हारे सामने सर्प निकाल कर रख दूँ और तुम उनके साथ खेलों, इस बीच में कुछ तुम्हें जोखिम पहुँच जाये तब राजा मेरी क्या बुरी दशा करें? क्या उस समय वे मुझे छोड़ देंगे? कभी नहीं। इसलिए न तो मैं ही ऐसा कर सकता हूँ और न तुम्हें ही इस विषय में कुछ विशेष आग्रह करना उचित है। हाँ तुम कहो तो मैं तुम्हें कुछ खेल दिखा सकता हूँ ॥१५॥

नागदत्त बोला-तुम्हें पिताजी की ओर से कुछ भय नहीं करना चाहिए। वे स्वयं अच्छी तरह जानते हैं कि मैं इस विषय में कितना विज्ञ हूँ और इस पर भी तुम्हें सन्तोष न हो तो आओ मैं पिताजी

ततो हृष्टेन तेनोक्तं नागदत्तेन तं प्रति। मुञ्च मुञ्च द्वितीयं च सर्पं भो मन्त्रवादिक ॥१७॥
 तेनोक्तं देव सर्पोऽयं महादुष्टः प्रवर्तते। दैवात्खादति चेदस्य प्रतीकारो न विद्यते ॥१८॥
 नागदत्तस्ततो रुष्टा वराकोऽयं करोति किम्। मन्त्रतंत्रप्रवीणस्य ममेति वचनं जगौ ॥१९॥
 ततस्तेन नृपादींश्च कृत्वा तान्साक्षिणः पुनः। विमुक्तः कालसर्पश्च तेनासौ भक्षितः पुमान् ॥२०॥
 तदा तद्विषमाहात्म्यान्नागदत्तो महीतले। पपात निश्चलो भूत्वा मोहान्धो वा भवाम्बुधौ ॥२१॥
 राज्ञाप्याकारिताः सर्वे तदा ते मन्त्रवादिनः। तैरुक्तं कालदृष्टोऽयं भो स्वामिनैव जीवति ॥२२॥

से तुम्हें क्षमा करवाये देता हूँ। यह कहकर नागदत्त प्रियदत्त को पिता के पास ले गया और मारे अभिमान में आकर बड़े आग्रह के साथ महाराज से उसे अभय दिलवा दिया। नागधर्म कुछ तो नागदत्त का सर्पों के साथ खेलना देख चुके थे और इस समय पुत्र का बहुत आग्रह था, इसलिए उन्होंने विशेष विचार न कर प्रियधर्म को अभय प्रदान कर दिया। नागदत्त बहुत प्रसन्न हुआ उसने प्रियधर्म से सर्पों को बाहर निकालने के लिए कहा। प्रियधर्म ने पहले एक साधारण सर्प निकाला। नागदत्त उसके साथ क्रीड़ा करने लगा और थोड़ी देर में उसे उसने पराजित कर दिया, निर्विष कर दिया। अब तो नागदत्त का साहस खूब बढ़ गया। उसने दूने अभिमान के साथ कहा कि तुम क्या ऐसे मुर्दे सर्प को निकालकर और मुझे शर्मिन्दा करते हो? कोई अच्छा विषधर सर्प निकालो न? जिससे मेरी शक्ति का तुम भी परिचय पा सको ॥१६-१७॥

प्रियधर्म बोला—आपका होश पूरा हुआ। आपने एक सर्प को हरा भी दिया है। अब आप अधिक आग्रह न करें तो अच्छा है। मेरे पास एक सर्प और है, पर वह बहुत जहरीला है, दैवयोग से उसने काट खाया तो समझिये फिर उसका कुछ उपाय ही नहीं है। उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है। इसलिए उसके लिए मुझे क्षमा कीजिए। उसने नागदत्त से बहुत-बहुत प्रार्थना की पर नागदत्त ने उसकी एक नहीं मानी। उलटा उस पर क्रोधित होकर वह बोला—तुम अभी नहीं जानते कि इस विषय में मेरा कितना प्रवेश है? इसीलिए ऐसी डरपोकपने की बातें करते हो। पर मैंने ऐसे-ऐसे हजारों सर्पों को जीत कर पराजित किया है। मेरे सामने यह बेचारा तुच्छ जीव कर ही क्या सकता है? और फिर इसका डर तुम्हें हो या मुझे? वह काटेगा तो मुझे ही न? तुम मत घबराओ, उसके लिए मेरे पास बहुत से ऐसे साधन हैं, जिससे भयंकर से भयंकर सर्प का जहर भी क्षणमात्र में उतर सकता है ॥१८-१९॥

प्रियधर्म ने कहा—अच्छा यदि तुम्हारा अत्यन्त ही आग्रह है तो उससे मुझे कुछ हानि नहीं। इसके बाद उसने राजा आदि की साक्षी से अपने दूसरे सर्प को पिटारे में से निकाल कर बाहर कर दिया। सर्प निकलते ही फुंकार मारना शुरू किया। वह इतना जहरीला था कि उसके साँस की हवा ही से लोगों के सिर घूमने लगते थे। जैसे ही नागदत्त उसे हाथ में पकड़ने को उसकी ओर बढ़ा कि सर्प ने उसे बड़े जोर से काट खाया। सर्प का काटना था कि नागदत्त उसी समय चक्कर खाकर धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा और अचेत हो गया। उसकी यह दशा देखकर हाहाकार मच गया। सब की आँखों से आँसू

महाचिन्तातुरेणोच्चैर्नागधर्ममहीभुजा। अहो वादिन्यदि त्वं च करोष्येतं सचेतनः ॥२३॥
 अर्धराज्यं तदा तुभ्यं दीयतेऽत्र मया ध्रुवम्। इत्युक्त्वा तेन तस्यैव स्वपुत्रोसौ समर्पितः ॥२४॥
 स वादी प्राह भो नाथ कालसर्पेण भक्षितः। जीवत्यत्र यदा जैनीं दीक्षां गृह्णाति निर्मलाम् ॥२५॥
 भूत्वा सचेतनश्चेति ममादेशोस्ति भूपते। एवमस्त्विति भूभर्ता संजगाद प्रमोदतः ॥२६॥
 तदा चोत्थापयामास मंत्रवादी नृपात्मजम्। मिथ्यामार्गविषक्रान्तं प्राणिनां वा गुरुर्महान् ॥२७॥
 सावधानस्ततो भूत्वा नागदत्तो विचक्षणः। श्रुत्वा नृपादितः सर्वा तां प्रतिज्ञां प्रसन्नधीः ॥२८॥
 मुनेर्यमधरस्योच्चैः पादमूले सुभक्तितः। दीक्षां जग्राह जैनेन्द्रीं सुरेन्द्रैः परिपूजिताम् ॥२९॥
 प्रियधर्मचरो देवः प्रकटीभूय भक्तिभाक्। नत्वा तं पूर्ववृत्तान्तं कथयित्वा दिवं गतः ॥३०॥
 ततः परमवैराग्यान्नागदत्तो मुनीश्वरः। विशुद्धचरणोपेतो जिनकल्पी बभूव च ॥३१॥
 सुधीः श्रीमज्जिनेन्द्राणां नाना तीर्थेषु शर्मदाम्। यात्रां जिनेन्द्रसद्भक्तिं कुर्वाणः परया मुदा ॥३२॥
 एकदासौ महाटव्या-मागच्छन्मुनिसत्तमः। सूरदत्ताश्रितैश्चोरै रुद्धमार्गो दुराशयैः ॥३३॥

की धारा बह चली। राजा ने उसी समय नौकरों को दौड़ाकर सर्प का विष उतारने वालों को बुलवाया। बहुत से मांत्रिक-तांत्रिक इकट्ठे हुए। सबने अपनी-अपनी करनी में कोई की कमी नहीं रक्खी। पर किसी का किया कुछ नहीं हुआ। सबने राजा को यही कहा कि महाराज, युवराज को तो कालसर्प ने काटा है, अब ये नहीं जी सकेंगे। राजा बड़े निराश हुए। उन्होंने सर्प वाले से यह कह कर, कि यदि तू इसे जिला देगा तो मैं तुझे अपना आधा राज्य दे दूँगा। नागदत्त को उसी के सुपुर्द कर दिया। प्रियधर्म तब बोला-महाराज, इसे काटा तो है कालसर्प ने और इसका जी जाना भी असंभव है, यदि यह जी जाये तो आप इसे मुनि हो जाने की आज्ञा दें तो, मैं भी एक बार इसके जिलाने का यत्न कर देखूँ। राजा ने कहा-मैं इसे भी स्वीकार करता हूँ। तुम इसे किसी तरह जिला दो, यही मुझे इष्ट है ॥२०-२६॥

इसके बाद प्रियधर्म ने कुछ मन्त्र पढ़ पढ़ाकर उसे जिन्दा कर दिया। जैसे मिथ्यात्वरूपी विष से अचेत हुए मनुष्यों को परोपकारी मुनिराज अपना स्वरूप प्राप्त करा देते हैं। जैसे ही नागदत्त सचेत होकर उठा और उसे राजा ने अपनी प्रतिज्ञा कह सुनाई वह उससे बहुत प्रसन्न हुआ। पश्चात् एक क्षणभर भी वह वहाँ न ठहर कर वन की ओर रवाना हो गया और यमधर मुनिराज के पास पहुँचकर उसने जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। उसे दीक्षित हो जाने पर प्रियधर्म, जो गारुड़ का वेष लेकर स्वर्ग से नागदत्त को सम्बोधने को आया था, उसे सब हाल कहकर और अन्त में नमस्कार कर स्वर्ग चला गया ॥२७-३०॥

मुनि बनकर नागदत्त खूब तपस्या करने लगे और अपने चारित्र को दिन पर दिन निर्मल करके अन्त में जिनकल्पी मुनि हो गए अर्थात् जिनभगवान् की तरह अब वे अकेले ही विहार करने लगे। एक दिन वे तीर्थयात्रा करते हुए एक भयानक वन में निकल आए। वहाँ चोरों का अड्डा था, सो चोरों ने मुनिराज को देख लिया। उन्होंने यह समझ कर, कि ये हमारा पता लोगों को बता देंगे और फिर हम पकड़ लिए जावेंगे, उन्हें पकड़ लिया और अपने मुखिया के पास वे लिवा ले गए। मुखिया का नाम

अस्मानसौ मुनिर्गत्वा लोकानां कथयिष्यति। भीत्वेति धर्तुमारब्धो महालुण्टाकपण्डितैः ॥३४॥
 सूरदत्तस्ततः प्राह चौराणामग्रणीर्महान्। अहो परमचारित्रो वीतरागोयमद्भुतम् ॥३५॥
 पश्यन्नपि प्रभुर्धीमानैव पश्यति किंचन। न किंचित्कथयिष्यत्येष केषांचिद्धीरमानसः ॥३६॥
 अतोसौ मुच्यतां शीघ्रं मा भयं कुरुत ध्रुवम्। तदाकर्ण्य भटैस्तैश्च विमुक्तो मुनिनायकः ॥३७॥
 अत्रान्तरे मुनेस्तस्य माता या नागदत्तिका। नागाश्रयं निजां पुत्रीं समादाय विभूतिभिः ॥३८॥
 वत्सदेशेऽत्र कौशल्यां जिनदत्तमहीपतेः। पुत्राय जिनदत्ताया जिनपालाय धीमते ॥३९॥
 तां दातुं बहुभिः सार-सम्पदाभिः समन्विता। सा गच्छन्ती तदामार्गे सुजनैः परिमण्डिताः ॥४०॥
 सम्मुखं नागदत्तं तं मुनीन्द्रं वीक्ष्य भक्तितः। नत्वा प्राह मुने मार्गो विशुद्धोऽस्ति नवैति च ॥४१॥
 मौनं कृत्वा मुनिः सोऽपि निर्गतो मोहवर्जितः। शत्रुमित्रसमानश्च महाचारित्रमण्डितः ॥४२॥
 नागदत्ता तथा चौरैर्धृत्वा सर्वधनादिकम्। गृहीत्वा सूरदत्तस्य सुपुत्री सा समर्पिता ॥४३॥
 तदा तस्करनाथोसौ सूरदत्तो जगाद च। चौराणामग्रतः किं भो भवद्भिः सम्बिलोकितम् ॥४४॥
 औदासीन्यं मुनीन्द्रस्य निस्पृहस्यास्य सर्वथा। एतया वन्दितश्चापि पृष्टश्चापि सुभक्तितः ॥४५॥
 एतेषां भक्तिकानां च नास्मद्वार्त्ता जगौ मुनिः। धीरो वीरोतिगंभीरो जिनतत्त्वविदाम्बरः ॥४६॥

था सूरदत्त। वह मुनि को देखकर बोला— तुमने इन्हें क्यों पकड़ा? ये तो बड़े सीधे और सरल स्वभावी हैं। इन्हें किसी से कुछ लेना देना नहीं, किसी पर इनका राग-द्वेष नहीं। ऐसे साधु को तुमने कष्ट देकर अच्छा नहीं किया। इन्हें जल्दी छोड़ दो। जिस भय की तुम इनके द्वारा आशंका करते हो, वह तुम्हारी भूल है। ये कोई बात ऐसी नहीं करते जिससे दूसरों को कष्ट पहुँचे। अपने मुखिया की आज्ञा के अनुसार चोरों ने उसी समय मुनिराज को छोड़ दिया ॥३१-३७॥

इसी समय नागदत्त की माता अपनी पुत्री को साथ लिए हुए वत्स देश की ओर जा रही थी। उसे उसका विवाह कौशाम्बी के रहने वाले जिनदत्त सेठ के पुत्र धनपाल से करना था। अपने जमाई को दहेज देने के लिए उसने अपने पास उपयुक्त धन-सम्पत्ति भी रख ली थी। उसके साथ और भी पुरजन परिवार के लोग थे। सो उसे रास्ते में अपने पुत्र नागदत्त मुनि के दर्शन हो गए। उसने उन्हें प्रणाम कर पूछा—प्रभो, आगे रास्ता तो अच्छा है न? मुनिराज इसका कुछ उत्तर न देकर मौन सहित चले गए क्योंकि उनके लिए तो शत्रु और मित्र दोनों ही समान हैं ॥३८-४२॥

आगे चलकर नागदत्ता को चोरों ने पकड़कर उसका सब माल असबाब छीन लिया और उसकी कन्या को भी उन पापियों ने छीन लिया। तब सूरदत्त उनका मुखिया उनसे बोला—क्यों आपने देखी न उस मुनि की उदासीनता और निस्पृहता? जो इस स्त्री ने मुनि को प्रणाम किया और उनकी भक्ति की तब भी उन्होंने इससे कुछ नहीं कहा और हम लोगों ने उन्हें बाँधकर कष्ट पहुँचाया तब उन्होंने हमसे कुछ द्वेष नहीं किया। सच बात तो यह कि उनकी वह वृत्ति ही इतने ऊँचे दरजे की है, जो उसमें भक्ति करने वाले पर तो प्रेम नहीं और शत्रुता करने वाले से द्वेष नहीं। दिगम्बर मुनि बड़े ही शान्त, धीर, गम्भीर और तत्त्वदर्शी हुआ करते हैं ॥४३-४६॥

इत्याकर्ण्य ततः प्राह नागदत्ता प्रकोपतः। देहि भो सूरदत्त त्वं छुरिकामतिदारुणाम् ॥४७॥
 कुक्षिं विदारयामीति यत्रायं नवमासकान्। निष्ठुरः स्थापितः कष्टैः कुपुत्रो मोहवर्जितः ॥४८॥
 तच्छ्रुत्वा सूरदत्तोसौ महावैराग्यमाप्तवान्। या माता मुनिनाथस्य सा त्वं माता ममापि च ॥४९॥
 इत्युक्त्वा तां प्रणम्योच्चैर्दत्त्वा सर्वधनं पुनः। संविसर्ज्य तथागत्य सूरानामग्रणीर्दुतम् ॥५०॥
 नागदत्तमुनेः पाद-पद्मद्वैतं प्रणम्य च। स्तुत्वा तं परया प्रीत्या मुनीन्द्रं गुणशालिनम् ॥५१॥
 दीक्षामादाय जैनेन्द्रिं तत्समीपे सुखप्रदाम्। क्रमात्सद्दर्शनज्ञान-चारित्र्यैर्जिनभाषितैः ॥५२॥
 घातिकर्मक्षयं कृत्वा लोकालोकप्रकाशकम्। केवलज्ञानमुत्पाद्य देवेन्द्राद्यैः प्रपूजितः ॥५३॥
 सम्बोध्य सकलान्भव्यान्स्वर्गमोक्षप्रदायकः। शेषकर्मक्षयं कृत्वा प्राप्तवान्मोक्षमक्षयम् ॥५४॥
 सकलगुणसमुद्रः सर्वदेवेन्द्रवन्द्य- स्त्रिभुवनजननेत्रोत्कृष्टनीलोत्पलेन्दुः।
 सृजतु मम शिवानि श्रीजिनः सूरदत्तो भवतु च भवशान्त्यै नागदत्तो मुनीन्द्रः ॥५५॥
 इति कथाकोशे नागदत्तमुनेः कथा समाप्ता।

नागदत्ता यह सुनकर, कि यह सब कारस्तानी मेरे ही पुत्र की है, यदि वह मुझे इस रास्ते का सब हाल कह देता, तो क्यों आज मेरी यह दुर्दशा होती? क्रोध के तीव्र आवेग से थरथर काँपने लगी। उसने अपने पुत्र की निर्दयता से दुःखी होकर चोरों के मुखिया सूरदत्त से कहा—भाई, जरा अपनी छुरी तो मुझे दे, जिससे मैं अपनी कोख को चीरकर शान्ति लाभ करूँ। जिस पापी का तुम जिक्र कर रहे हो, वह मेरा ही पुत्र है। जिसे मैंने नौ महीने कोख में रखा और बड़े-बड़े कष्ट सहे उसी ने मेरे साथ इतनी निर्दयता की कि मेरे पूछने पर भी उसने मुझे रास्ते का हाल नहीं बतलाया। तब ऐसे कुपुत्र को पैदाकर मुझे जीते रहने से ही क्या लाभ? ॥४७-४८॥

नागदत्ता का हाल जानकर सूरदत्त को बड़ा वैराग्य हुआ! वह उससे बोला—जो उस मुनि की माता है, वह मेरी भी माता, क्षमा करो। यह कहकर उसने उसका सब धन असबाब उसी समय लौटा दिया और आप मुनि के पास पहुँचा। उसने बड़ी भक्ति के साथ परम गुणवान् नागदत्त मुनि की स्तुति की और पश्चात् उन्हीं के द्वारा दीक्षा लेकर वह तपस्वी बन गया ॥४९-५२॥

साधु बनकर सूरदत्त ने तपश्चर्या और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र्य द्वारा घातिया कर्मों का नाश कर लोकालोक का प्रकाशक केवलज्ञान प्राप्त किया और संसार द्वारा पूज्य होकर अनेक भव्य जीवों को कल्याण का रास्ता बतलाया और अन्त में अघातिया कर्मों का भी नाश कर अविनाशी, अनन्त, मोक्ष पद प्राप्त किया ॥५३-५४॥

श्री नागदत्त और सूरदत्त मुनि संसार के दुःखों को नष्ट कर मेरे लिए शान्ति प्रदान करें, जो कि गुणों के समुद्र हैं, जो देवों द्वारा सदा नमस्कार किए जाते हैं और जो संसारी जीवों के नेत्ररूपी कुमुद पुष्पों को प्रफुल्लित करने के लिए चन्द्रमा समान हैं जिन्हें देखकर नेत्रों को बड़ा आनन्द मिलता है शान्ति मिलती है ॥५५॥

१५. कुसङ्गोद्भवदोषस्य कथा ।

श्रीसर्वज्ञं नमस्कृत्य सर्वसत्त्वहितप्रदम् । वक्ष्ये दुस्सङ्गदोषस्य कथां दुस्सङ्गहानये ॥१॥
 वत्सदेशेत्र विख्याते कौशाम्बीपत्तने शुभे । राजाभूद्धनपालाख्यो दुष्टानां मानमर्दकः ॥२॥
 चतुर्वेदपुराणादि-सर्वशास्त्रविचक्षणः । पुरोहितो भवत्तस्य शिवभूतिर्द्विजोत्तमः ॥३॥
 तत्रैव कल्पपालश्च पूर्णचन्द्रो धनैर्युतः । मणिभद्रा प्रिया तस्य सुमित्राख्या सुता भवत् ॥४॥
 कदाचित्पूर्णचन्द्रोसौ सुमित्राया विवाहके । भोजयित्वाखिलं लोकं युक्तितो वरभोजनः ॥५॥
 आमंत्रितश्च मित्रत्वाच्छिवभूतिः पुरोहितः । तेनोक्तं मित्रं शूद्रान्न-मस्माकं नैव कल्पते ॥६॥
 कल्पपालः पुनः प्राह पवित्रोद्यानके सुधीः । निष्पादितं महाविप्रैर्भोजनं क्रियतामिति ॥७॥
 एवमस्त्विति तेनोक्तं ब्राह्मणेन तदाग्रहात् । तद्वानं हि प्रधानं स्याल्लोके यद्विनयान्वितम् ॥८॥

आत्म तत्त्व का श्रद्धान करना यही शुद्ध सम्यक्त्व है उसे जानना वही सम्यग्ज्ञान है और उसी में अपने मन को निश्चल कर ठहराना वही सम्यक्चारित्र हैं । यही स्तनत्रय है जो कि मोक्ष का मार्ग है अर्थात् तत्त्व को देखना, जानना व उसमें लीन होना यही मोक्ष का निश्चल मार्ग है ।

१५. शिवभूति पुरोहित की कथा

(कुसंगति के फल की कथा)

मैं संसार के हित करने वाले जिनभगवान् को नमस्कार कर दुर्जनों की संगति से जो दोष उत्पन्न होते हैं, उससे सम्बन्ध रखने वाली एक कथा लिखता हूँ, जिससे कि लोग दुर्जनों की संगति छोड़ने का यत्न करें ॥१॥

यह कथा उस समय की है, जब कि कौशाम्बी का राजा धनपाल था । धनपाल अच्छा बुद्धिमान् और प्रजाहितैषी था । शत्रु तो उसका नाम सुनकर काँपते थे । राजा के यहाँ एक पुरोहित था । उसका नाम था शिवभूति । वह पौराणिक अच्छा था ॥२-३॥

वहीं दो शूद्र रहते थे । उनके नाम कल्पपाल और पूर्णचन्द्र थे । उनके पास कुछ धन भी था । उनमें पूर्णचन्द्र की स्त्री का नाम था मणिप्रभा । उसके एक सुमित्रा नाम की लड़की थी । पूर्णचन्द्र ने उसके विवाह में अपने जातीय भाइयों को जिमाया और उसका राज पुरोहित से कुछ परिचय होने से उसने उसे भी निमंत्रित किया । पर पुरोहित महाराज ने उसमें यह बाधा दी कि भाई, तुम्हारा भोजन तो मैं नहीं कर सकता । तब कल्पपाल ने बीच में ही कहा-अस्तु । आप हमारे यहाँ का भोजन न करें । हम ब्राह्मणों के द्वारा आपके लिए भोजन तैयार करवा देंगे तब तो आपको कुछ उजर न होगा । पुरोहितजी आखिर थे तो ब्राह्मण ही न? जिनके विषय में यह नीति प्रसिद्ध है कि “असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः” अर्थात् लोभ